यो पंचमेळा रौ साग देवतड़ां नै भी नाय मिलै जी राज जी। मीठा मीठा काचरा, ग्वारफली कचनार, मोठ फली चूंगफळी मांय, मतीरौ मिलाय। महीं महीं मिरची पीसी, दियौ राम रस डार, तेल रौ म्हें छूंकण दीनौ, दीनो हण्डी चढ़ाय...।

चटनी जिसे अवलेह के नाम से जाना गया है, राजस्थानी आस्वाद से प्रसिद्ध हुई और अनेक प्रकार की चटणियां बना-बनाकर सास और बहू ने खरड़-सिलबट्टा घिसा, बारीक-बारीक पीसा। आयुर्वेदिक ग्रंथों में चटनी का उपयोग औषधियों के रूप में करने का जिक्र हुआ है तो लोकगीतों में अमृत का आस्वाद गाया गया-

चटणी में इमरत घोळ ल्याई नार चटणी में, बाजरिया री रोटी खाणै, चटणी म्हानै चोखी लागै, तरसै तरसै दोनूं म्हारी जाड़। खातां खातां म्हारौ मन नहीं धापै, म्हारौ जीवड़ौ हो रह्यो निहाळ। ढब सूं पीसी ढब सूं नान्ही नान्ही पीसी, जीवड़ा में छूंकी ढब सूं रामरस भांख्यौ म्हारा स्याम। छींक छींक चटणी रोटी सूं जीमी, जिण में भरियो खटरस सुवाद, ऊपर ठंडा नीर जो पीओ, म्हारौ हिवड़ौ भयौ ए निहाल, चटणी में इमरत घोल ल्याई चटणी में...।

भोजन के साथ ही पेय और खाद्य के रूप में रायतों का प्रयोग राजस्थान को खूब रुचता आया है। तरह-तरह के रायते इस धरती ने देशभर को दिए हैं। बारहवीं सदी से ही यहां रायतों का जिक्र मिलता है जबकि अन्य भोजन ग्रंथों में यह विवरण दुर्लभ है। रायतो के लोकगीत इस धरती पर भोजन की मनुहार के गीतों के साथ गेय रहे हैं-

थांरलौ वीरो सा खेतां मांय जासी, खेजड़ी चढ़ सांगरड़ी भी तोड़ ल्यासी अे छोटी नणदूली। बहुवड़ आयौ आयो फागण चैत, फोगां रै लाग्यो फोगलौ, फोगलै रो रायतौ। बहुवड़ अळियै चळिये ल्यायी अे, बहुवड़ म्हांसूं अक चल्योय न जाय, रजवंती फोगां रौ भावै रायतौ, सांगरियां री तरकारी स्वाद लागै अे छोटी नणदूली, ओ कुण भावज खेतां मांय जासी, ओ कुण खेजड़ी चढ़ तोड़ ल्यासी चोखी तरकारी...।

नगर-डगर की रचना का वर्णन

नगरों की शोभा में परकोटा, उसका उपरिभाग, दुर्ग और उनकी प्राचीर, अट्टालिकाओं, खाई, तोरण, ध्वजा, चूने से पोते और रंग-चित्रों से चित्रित महल, हवेलियों, राजपथ, पोखरियों, बगीचों, राजप्रासाद और देवल-मालियों, मन्दिरों का वर्णन भी विशिष्टता लिए प्रतीत होता है-

थे आवो जी बादीला म्हारी जैसलमेर, तालर-तालर रिमझिम आवो, तालर-तालर मुड़-मुड़ आवो...।

सिध-सिध ए बादळी, बस सुरंगा रे वास, बरसाले मत बलवे रही मरुधर री आस।

उद्यानों की छटा में चटकी कलियां, खिले पुष्पों, लताओं, कृत्रिम पर्वतादि, कूकती कोयल, मंडराते भौरों, चकवा-चकवी, सुवटिया-तोतों, केकालाप करते मयूरों और पथिक क्रीड़ा का वर्णन मिलता है। पर्वतों के शिखर, गुफाओं, रत्नों, वनवासियों, झरना, धातुओं और वनखण्ड में आखेट, सिंह, हरिण के विचरण आदि विशिष्ट हैं। पपीहा के बोलने की छटा तो अनूठी ही है-

रुत आई रै पपइया थारै बोलण री रुत आई रे, जेठ मास री लूवां रै बीती, अब सुरंगी रुत आई, आसाढ़ उतरियो सावण लाग्यो, काळी घटा घिर आई, कदेयक झोला चलै सूरिया, धीमी धीम पुरवाई। मोठ बाजरी सूं खेत लहरकै, बन-बन हरियाळी छायी, झिरमिर-झिरमिर मेहूड़ो बरसै, स्याम बादळी घिर आई, रुत आई रे पपइया थारे बोलण री रुत आई रे...।

नर-नारियों के सौंदर्य का वर्णन यहां के गीतों के गजरे हुए हैं। मूमल जैसे गीत में नारी सौंदर्य का अप्रतिम वर्णन मिलता है। ढोला मारू का दोहा में आवृत्ति की सहारा लेकर विछोह और मिलन मूलक सौंदर्य की छटा राजस्थान के मन और मिजाज को बताती है-

बीजुळियां चहळाहवळि, आभइ आभइ कोटि।
कद रे मिळउंली सज्जणां, कस कंचुकी छोड़ी।।
बीजुलियां चहळाहवळि, आभइ आभइ चारि।
कद रे मिळउंली सज्जणां, लाम्बी बांह पसारि...।

सौंदर्य की छटा पहनावे से अधिक रही है। नारी मन ने साजन के पेच पाग और अपने लिए अस्सी कली के घाघरे का गुणगान किया है-

म्हारौ तो घेर घुमाळौ सासूजी, नांनी बूंट्यां रौ घाघरौ। कात्यौ सूत प्यारौ लागै घाघरौ, म्हारै मन भायौ घाघरौ। म्हारै परण्यौड़ौ बणवाया, देवर ल्यायौ जी घाघरौ। नांनी बूट्यां रौ घाघरौ, म्हांने वाळौ लागै घाघरौ, म्हारी सासूजी कतर्‌यौ थांन, बाईजी सींयौ घाघरौ। अस्सी कळी रा घाघरा में जणती सूर सपूत...।

सइयां बाई के एक लोकगीत में लाख के चूड़ले, लुमक-झुमक वाली साड़ी, ठसकदार ठोकली और घमकते घाघरे का जो वर्णन आया है, वह भारतीय प्रदेशों के गीतों में अपनी अलग ही छटा बिखेरता है-

गुड़ गुड़ गुड़ल्यौ गुड़तौ जाय, जीमे म्हांका सैइयां बाई बैठ्या जाय,
घाघरौ घमकाता जाय, लूगड़ी लहराता जाय, ठोकली भड़काता जाय, चूड़लौ चमकाता जाय...।

इस तरह लोकगीतों में यहां की अनेक छटाएं बिखरी और घटाएं बरसती हुई मिलती हैं। लोकगीतों में यहां की भाषा और भाव के कामण लिखावण लिए हैं। यह प्रदेश कहने से अधिक देखने का है और देखने से अधिक बसने का है, तभी तो कहा गया है-

पांच पानां जी बड़लो रोपिया, हो गयो घेर घुमेर।
माया रा लोभी अब घर आवो चिंता लग रही फेर...।